जिन्होने इतिहास का रुख मोड़ा

संघर्ष की नायीकाओं की गाथाएं ...

संकलन एंव लेखन-
सोहिनी
तन्मय निवेदिता
महेश राऊत

जिन्होंने इतिहास का रुख मोड़ा

संघर्ष की नायिकाओं की गाथाएं ...

संकलन एवं लेखन

शोहिनी
तन्मय निवेदिता
महेश राऊत

कॉपीराईट नहीं–इस पुस्तक का कोई भी अंश आन्दोलन के कार्य हेतु छापने और उसे प्रकाशन का हम समर्थन करते हैं। (सिर्फ व्यक्तिगत वितरण हेतु) कोई भी अंश उपयोग करते समय पुस्तक का उल्लेख करेंगे तो हमें खुशी होगी।

प्रथम संस्करण : 2018 (8 मार्च, अंरराष्ट्रीय महिला दिवस)

ISBN 978-93-86810-67-0

प्रकाशक

अनुज्ञा बुक्स

1/10206, लेन नं. 1, वेस्ट गोरख पार्क
शाहदरा, दिल्ली-110 032
फोन : 011-22825424, 09350809192
www : anuugybooks.com
e-mail : anuugyabooks@gmail.com

एवं

उलगुलान प्रकाशन

नागपुर, महाराष्ट्र राज्य
संपर्क : 9405324405, 8390045482

के

संयुक्त तत्त्वावधान में प्रकाशित

आन्दोलन सहयोग राशि : 20.00 रुपये

मुद्रक

अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32

पुस्तिका के संदर्भ में...

"मैं किसी समुदाय की प्रगति महिलाओं ने जो प्रगति हासिल की है उससे मापता हूँ।"
– डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर

"यह काम मुश्किल है, इसकी विशालता निराश करने लायक है। पर उन समुदायों को देखो जो हर दिन संघर्ष कर रहे है। वे हर दिन लगे है; लड़े हैं। उनकी नजरों में भी उम्मीद की एक किरण है, और इसलिए तुम्हें आगे बढ़ना होगा। तुम्हें यह संघर्ष छोड़ने की छूट नहीं है। बीती हुए पीढ़ी की लिबेरियन महिलाओं की आवाज गूँजती है 'रुकना नहीं है।..', हम जवाब में कहते हैं, 'कभी नहीं'..."
–**लेयमाह ग्बोवी**, लिबेरियन शांति कार्यकर्ता व महिला अधिकार आंदोलनकारी

"इतिहास को भूल जाना ही शोषण की जड़ होती है"
– **पाओला गन एलन**, अमरीकी आदिवासी आंदोलनकारी एवं लेखिका

इतिहास के अहमियत को कोई नकार नहीं सकता। इतिहास से सीख मिलती है। अपने आप को, दुनिया को, आंदोलन को समझने की और उसे बदलने का एक जरिया, एक नजरिया होता है इतिहास। एक इतिहास से ही कई नए इतिहासों को रचने की प्रेरणा और ताक़त मिलती है। किसी भी प्रगतिशील आंदोलन/ताक़त के लिए ज़रूरी हो जाता है अपने इतिहास को स्थापित करना। चुप्पी और अँधेरे में धकेल दिए गए सैकड़ों परिचित-अपरिचित चेहरों और आवाजों के इतिहास को। सत्ताधारियों को चुनौती देने वाली इतिहास को। सर्वहाराओं के इतिहास को, शोषितों के इतिहास को। लड़ने और जीतने के इतिहास को।

ख़ास कर आज के राजनैतिक माहौल में, जहाँ हमारे जैसे विविधताओं से भरे देश में हम लोगों के सतरंगी इतिहास को एक ही रंग में ढालने की कोशिश की जा रही है। इस समय तरह-तरह की सत्ता से लड़ते हुए संघर्षशील निर्माणकारी साथियों के लिए और भी ज़रूरी हो जाता है अपने खुद के प्रगतिशील इतिहास को, अपने लोगों के इतिहास को खोजना, उसे जनता के बीच स्थापित करना, उनके जश्न में रंगना।

समाज के विकास के हर दौर में महिलाओं की अपनी महत्वपूर्ण योगदान रही है। अपने संघर्ष और मेहनत से उन्होंने सभ्यताओं का निर्माण किया है। और ऐसे ही संघर्षकारी इतिहास का दिवस है 8 मार्च यानि अंतराष्ट्रीय महिला दिवस।

8 मार्च का सिर्फ महिला आंदोलन में ही नहीं बल्कि दुनिया के मजदूर आंदोलन के इतिहास में भी बहुत ही महत्त्व है। 8 मार्च 1857 को न्यू यार्क शहर में कपड़ा फेक्टरियों में काम करने वाली महिलाओं ने पहली बार 12 घंटे काम, कम मजदूरी, काम के जगह के ख़राब हालातों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया, जिसे पुलिस द्वारा हमला करके दबा दिया गया था। इसके दो साल बाद ही दोबारा मार्च में इन्हीं महिलाओं ने पहली यूनियन बनाई थी।

इसके बाद 8 मार्च 1908 को 15,000 के लगभग महिलाओं ने कम घंटे काम, अच्छी मजदूरी, मत देने का अधिकार मिले और बाल मजदूरी को बंद किया जाये आदी मांगों को लेकर न्यूयार्क शहर में मार्च निकाला था, जो महिला दिवस मनाने की प्रेरणा बना। महिला दिवस का आयोजन पहली बार 28 फरवरी 1909 को किया गया था। बाद मे अगस्त 1910 को कोपनहेगन में कम्युनिष्ट इंटरनेशनल की नेत्री कॉमरेड क्लारा जेटकिन के नेतृत्व में समाजवादी महिलाओं के अंतराष्ट्रीय सम्मेलन, जिसमें 17 देशों से 100 प्रतिनिधिओं ने हिस्सा लिया था वहाँ 8 मार्च को अंतराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाये जाने का प्रस्ताव पारित किया गया।

1917 में अक्तूबर क्रांति के दौरान 'रोटी, जमीन और शांति' की मांगों को लेकर अलेक्जान्द्रा कोल्लंताय के नेतृत्व में महिलाओं का ऐतिहासिक आंदोलन चला। रूस में जार राजा को सत्ता से उखाड़ फेंक दुनिया में पहली बार समाजवादी सरकार बनी, जिसमें महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सोवियत संघ ने 8 मार्च को राष्ट्रीय छुट्टी घोषित की, जिससे 8 मार्च का महत्त्व पूरी दुनिया में फैल गया।

'समाज में आधा हिस्सा, संघर्ष में आधा हिस्सा' के ऐलान के साथ नारी मुक्ति का सपना संजोकर संघर्ष में नेतृत्व से लेकर सभी भूमिकायें निभाने वाली जन नायिकाओं और साहसी योद्धाओं को हम 8 मार्च- अंतराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर सलाम करते हैं। नारीवादी आंदोलनों एवं शोषणमुक्त समाज के लिए जिन्होंने अपना योगदान दिया, अपने जीवन का बलिदान दिया उन्हें सभी को याद कर उनके अरमानों और अधूरे सपनों को पूरा करने के विश्वास के साथ यह पुस्तिका प्रस्तुत कर रहे हैं।

आज 8 मार्च, अंतराष्ट्रीय महिला श्रमिकों के इस ऐतिहासिक जश्न और जीत के दिवस पे हमें ये महसूस हुआ कि क्यों न हमारे नायिकाओं को हम खुद ही खोजें, उन्हें याद करें, और उनके सपनों को, हम सब के सपनो को साकार करने के तरफ और तेज़ी से बढें।

अगले कुछ पन्नों में कुछ ऐसी ही क्रांतिकारी महिलाओं और ट्रांसजेंडर साथियों की कहानियाँ दर्शायी गयी हैं जिन्होंने इतिहास का रुख मोड़ा है, पूरे नारीवादी आंदोलन को एवं विभिन्न अन्य छोटी बड़ी लड़ाईयों को अपने सोच और काम से,

अपनी बातों और बलिदानों से, एक नयी दिशा दी हैं। निजी जीवन और सार्वजनिक सामाजिक-राजनीतिक जीवन की दूरी को सफलता-पूर्वक मिटाने की हिम्मत की है।

यह पुस्तिका पूरे तरीके से पूर्ण नहीं है, ऐसे ढेर सारे साथी है जिन्हें इस पुस्तिका में हम शामिल नहीं कर पाए हैं, ज्यादातर दक्षिण एशियाई क्षेत्र के महिला आंदोलनकर्मियों को इसमें शामिल किया है, साथ ही दुनिया के अन्य क्षेत्रों से चुनिंदा नामों को लिया है। इन्होंने पूरी जिंदगी लगा दी है आंदोलन में, इनमें से कुछ जन कथाओं का भाग रही है। मानव सभ्यता के विकास के शुरुआती दौर से ही उसके निर्माण में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसमें से सबके नाम भी हमें अवगत नहीं हैं। यह पुस्तिका उन सभी के योगदानों को याद करते हुए बनाई गयी है।

आशा है कि यह पुस्तिका एक छोटी शुरुआत के रूप में काम करेगी। अन्य क्रांतिकारी महिला और ट्रांसजेंडर साथियों के बारे में जानकारी इकट्ठा कर उसे जनता तक पहुंचाना हमारा सामुहिक दायित्व है। अपेक्षा है कि अलग-अलग साथी और आंदोलन इस प्रक्रिया को आगे ले जाने में मदद करेंगे।

हम कतई नहीं मानते कि सिर्फ अंतराष्ट्रीय महिला दिवस के मौके पर ही इन साथियों को याद करना चाहिए। पर हम यह ज़रूर मानते हैं कि यह एक अच्छा अवसर है इनको हमारे रोजमर्रे की बातचीत में, हमारे ज़ेहन में, हमारे काम काज में पुनःस्थापित करने का। यह सब कहानियाँ हम सब की कहानियों से जुड़ी हुई हैं। आओ मिलके अपनी कहानियाँ बांटे, आकर अपने राजनैतिक आंदोलनकारी इतिहास की और साथ ही साथ बहनचारा और बंधुअता से बनी एक नए वर्तमान और भविष्य की पुनर्रचना करें।

आशीष, आशुतोष, कनिका, कल्याणी, मुकेश, एवं हितेश ने इस पुस्तिका के लेखन, संपादन, डिजाईन, एवं प्रकाशन में सहयोग दिया। इन सभी साथियों की मेहनत को सतरंगी सलाम।

इंकलाब जिंदाबाद...

तो ब्राह्मणवाद, पितृसत्ता, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, फासीवाद और
सामंती ताक़तों पे हल्ला बोल!
अरे बोल मेरी बहना... खुल के बोल...
और बोल मेरे भैया... तू भी बोल...

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका
रोजा पार्क्स 29
मॅक्सीको
पेट्रा 'पेद्रो' हेरेरा 24.
पश्चिम अफ्रिका
न्वान्येरुवा 23
हांडूरस
बर्ता कासरस 12

जर्मनी और युरोप

रोजा लक्समबर्ग और क्लारा जेटकिन २८

कुर्दीस्तान

इवाना होफमैन 18

कश्मिर

लाल डेड 8

मणिपुर / नागालिम

मनो[illegible] 19

अक्का महाद[illegible], मीराबाई, एवं सोयाराबाई 8

अनुराधा शानबाग/ गाँधी 10

बेगम हज़रत जहान और झलकारी बाई 11

बिनोदिनी दासी 13

चकली इब्लिमा 14

दुर्गावती 15

फमिला 16

फातिमा शेख और सावित्रीबाई फुले 17

मातंगिनी हझरा 20

मोसमात बुधिया 21

नांगेली 22

फूलन देवी 25

राजकुमारी गुप्ता 26

रमाबाई 27

मॉरिशस

एना-दे-बंगाल 9

भारत

अक्का महादेवी, मीराबाई, लाल डेड एवं सोयराबाई
(12वीं शताब्दी-16 शताब्दी)

महिलाएं सदियों से धर्म, जाति और लिंग की बेड़ियां तोड़ती आ रही हैं। अपनी कथनी से, अपने कार्यों से, अपनी लगातार कोशिशों से। इस संदर्भ से ज़ेहन में आता हैं, 1500 साल से चली आ रही दक्षिण एशिया की सूफी-भक्ति परंपरा और उनसे उभरी नायिकाओं के नाम जैसे कश्मीर की लाल डेड, कर्नाटक की महादेवी अक्का, राजस्थान की मीराबाई व महाराष्ट्र की सोयराबाई।

लाल डेड, मीराबाई और महादेवी अक्का सब ऊंचे घराने से आती थी और सोयराबाई महार जाति से, जिन्हें अछूत माना जाता था। फिर भी चारों ने गैरबराबरी पर अपने जाति और लिंग निर्धारित स्थानों को छोड़ कर धार्मिक कट्टरपंथ, सामाजिक कुरीति और गैरबरबरियों पर सवाल खड़े किये। ब्राह्मणवादी प्रथाओं को तोड़, कई पुरुष संतों का विरोध सह कर भी, इन महिलाओं ने शिक्षा एवं धार्मिक प्रशिक्षण हासिल की। संस्कृत जैसे विद्वानों की भाषाओं को त्याग कर आम इंसानों के बोल चाल की भाषा में वह अपनी रचनाएँ बनाती थी। मीरा, महादेवी और लाल डेड ने शादी और घर के तमाम रिश्तों को ठुकरा कर अपने खुद चुनी हुई ज़िन्दगी और साथियों को अहमियत दी। मीरा के लिए वह कृष्ण थे और उनकी सखी-सहेली थी, जिनका ज़िक्र उनकी रचनाओं में झलकता है। महादेवी और लल्ला के लिए वह शिव थे जिनको वह माँ, पिता, प्रेमी और पति के रूप में देखती। वही दूसरी तरफ, सोयरा अपने पति चोखामेला और ननद निर्मला के साथ घर गृहस्थी के दुःख सुख की कहानियाँ गाती। जातिगत भेदभाव, गरीबी और कुपोषण से जूझने की पीड़ा, महिला कवियों की मुश्किलों की बातें—यह सब उनके भजनों में मिलता हैं।

इन बगावती नारियों ने मूर्तिपूजन, पंडितों की तानाशाही, महंगी और दिखावों से भरी पूजापाठ से दूर हटके इंसानों की सेवा और सम्मान को ही असली धर्म कहा। अपने पूज्य शक्तियों में इन्हें सिर्फ पुरुष नहीं दिखाई पढ़ते, बल्कि स्त्री-पुरुष ताकतों के मिश्रण को ही यह परमशक्ति मानते थे। उस ताक़त के आगे डर से यह सिर नहीं झुकाते, उन्हें अपना साथी समझ के उनके संग मिलन की कवितायें लिखते, प्रेम और शांति की बातें चारों ओर फैलाते। मशहूर संत बन जाने के बाद भी इन्होंने धन या नाम या सत्ता हासिल करने की कोशिश नहीं की, बल्कि बड़ी सादगी और सरलता से अपनी जिंदगियां जी।

क्या आज की तारीख में उन सबों की तरह धर्म, जाति और लिंग पर सवाल उठाने की हिम्मत हम कर पाते हैं?

ऐना-दे-बंगाल (बंगाल की एना)
(18वीं शताब्दी)

अफ्रीका के एक छोटे से देश मॉरिशस में बहुत सालों तक नेदरलैंड का कब्ज़ा रहा था। मॉरिशस में नेदरलैंड के अफसर जबर्दस्ती गन्ने का खेती कराते थे। इन खेतों में काम करने के लिए वे चीन, भारत एवं अन्य अन्य देशों से मजदूरों को पकड़कर लाते थे। इन मजदूरों को फिर गुलाम बनाकर जानवरों की तरह गन्ने के खेतों पर खटाते थे। गुलाम मजदूरों को न मिलता था कोई वेतन, न कोई आराम या सुविधा। अक्सर, वह अपने मालिकों के तानाशाही का शिकार बनते थे। बंगाल की ऐना इन्हीं मजदूरों में से एक थी।

बहुत दमन सहने के बाद, ऐना और उनके कुछ दोस्त गुलामी की कैद से भाग निकले। निकलने के बाद उन्होंने खुद को संगठित किया और जंगल में अपनी एक कालोनी बनाए। यहीं पर उन्होंने गुलामी के खिलाफ संघर्ष की योजना बनायीं। उन्होंने तय किया कि मॉरिशस में चल रहे विदेशी राज का गढ़, फेड्रिक किले को उड़ाया जाए। इस किले में नेदरलैंड के अफसर और गुलामों का व्यवसाय करने वाले रहते थे और काम करते थे।

18 जून 1695 को, बंगाल की एना के नेतृत्व में इस किले को उड़ाया गया। लेकिन फिर भी, कुछ अफसर बच निकले थे। जब बंगाल की एना और उनके साथी पकड़े गए और उनपर मुकदमा चला, तब उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि उनका मकसद किले के अन्दर रहने वाले हर दमनकारी को ख़त्म करना और नेदरलैंड की गुलामी से पूरी आजादी पाना था।

बंगाल की एना और उनके साथी को तो मौत की सजा मिल गयी, लेकिन इस प्रतिरोध को मॉरिशस के इतिहास में गुलामी के खिलाफ हुए पहले संघर्ष के रूप में याद किया जाता है।

कॉ. अनुराधा शानबाग/ गाँधी
(28 मार्च 1954 - 12 अप्रैल 2008)

मुंबई में कम्युनिष्ट आंदोलन से जुड़े परिवार में अनुराधा का जन्म हुआ। अपने शुरुआती समय से ही क्रांतिकारी विचारधारा से अनुराधा प्रेरित रही। अपनी पढ़ाई के समय से नक्सलबारी आंदोलन से प्रेरित होकर युवा आंदोलन के साथ जुड़ कर उन्होंने काम शुरू किया। मुंबई के जीवन को छोड़ कर अनुराधा नागपुर को चली आई। वहाँ के दलित बस्तियों में रह कर, जातिव्यवस्था और मजदूरों के शोषण के विरोध में खड़े हुए 'दलित पेंथर' आंदोलन में वह आगे आई।

अनुराधा का महिला आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में महिलाओं को क्रांतिकारी आंदोलन से जोड़ने में वह सफल रही। क्रांतिकारी आदिवासी महिला संगठन बनाने में उनकी सक्रिय भूमिका रही। अनुराधा ने महिला आंदोलनों में कम्युनिष्ट (वामपंथी) महिला कर्मी के रूप में सहभाग दिया। महिला आंदोलनों में दलित और निचले वर्ग की महिलाओं का सहभाग और नेतृत्व होना चाहिए, इस मांग को वह बार-बार उठाती। उन्होंने आंदोलन के लिए विशेषतः दलित एवं महिला सवाल को लेकर बहुत सारे लेख भी लिखे हैं। मराठी, अंग्रेजी, हिंदी भाषा में विभिन्न क्रांतिकारी पत्रिकाओं में वे लिखती। उनके द्वारा लिखे गए साहित्य आज भी जमीन स्तर पर जनता को संगठित कर रही है।

उन्होंने भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) में काम किया और वह माओवादी पार्टी के केन्द्रीय समिति की पहली महिला सदस्य बनी। अनु, जानकी, नर्मदा, वर्षा, रमा आदि नामों से वह अपने कार्यक्षेत्र में जानी जाती थी झारखंड में आदिवासी महिलाओं के बीच महिला मुद्दों पर कार्यशाला लेकर आने के एक सप्ताह बाद ही उनका मलेरिया की वजह से 12 अप्रैल 2008 को निधन हुआ।

व्यवस्था में मूलभूत बदलाव से ही शोषक जाति-व्यवस्था, शोषक वर्गीय समाज और पितृसत्ता का अंत हो सकता है, इस विचार को केंद्रबिंदु बनाकर संघर्ष में वह शामिल हुई थी, उनके विचार, उनका काम आज भी आंदोलन के साथ चल रहा है और चलता रहेगा लड़ाई के अंतिम लक्ष्य तक।

बेगम हज़रत (1720-1879) और झलकारी बाई (1830-1857) – 1857 के लड़ाई की वीरांगनायें

बेगम हजरत महल जिनका नाम मुहम्मदी खानुम था, उनका जन्म भारत में अवध राज्य के फैजाबाद में हुआ था। अवध के राजा की वह बेगम बनी, और उन्होंने 'हजरत महल' का शीर्षक लिया। 1856 में ही ब्रिटिशों ने अवध को हड़प लिया और वाजिद अली शाह को कलकत्ता भागना पड़ा। अपने पति के अवध छोड़कर जाने के बाद, तलाक लेने की बजाये, बेगम ने अवध की सारी जिम्मेदारी अपने हाथों में ली। लखनऊ में 1857 की आजादी की पहली लड़ाई का नेतृत्व बेगम हजरत महल ने किया था। उन्होंने अंग्रेजी सेना का स्वयं मुकाबला किया। उनमें संगठन निर्माण की बेहतरीन क्षमता थी। बेगम हज़रत महल ने जब तक संभव, अपनी पूरी ताकत से अंग्रेजों का मुकाबला किया। अंततः उन्हें हथियार डाल कर नेपाल में शरण लेनी पड़ी। उनके इस साहस को देखते हुए 20वीं शताब्दी में अनेक महिलाएं उनसे प्रेरित हुई और आगे बढ़ी।

वीरांगना झलकारी बाई एक महिला सैनिक थी जिन्होंने 1857 के समय झाँसी के युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनका जन्म 22 नवम्बर 1830 को झाँसी के नजदीक भोजला ग्राम में हुआ था। उनकी माता बचपन में ही चल बसी। बचपन से ही वह घुड़सवारी और हथियार चलाने में माहिर थी। उस समय की सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए, झलकारी बाई प्रारंभिक शिक्षा नही ले सकी। लेकिन एक योद्धा की तरह झलकारी बाई ने काफी प्रशिक्षण प्राप्त किया था। बाद में वह रानी लक्ष्मीबाई की विशेष सलाहकार बनी और महत्वपूर्ण निर्णयों में भी भाग लेने लगी। 1857 के बगावत के समय, झलकारी बाई ने रानी लक्ष्मीबाई के प्राणों को बचाने के लिये खुद को रानी बताते हुए लड़ने का फैसला किया, इस तरह झलकारी बाई ने पूरी अंग्रेजी सेना को अपनी तरफ आकर्षित कर रखा था ताकि दूसरी तरफ से रानी लक्ष्मीबाई सुरक्षित बाहर निकल सके। बाद में अंग्रेजों ने झलकारी बाई को पकड़ कर फाँसी दे दी। इस तरह ये वीरांगना शहीद हुई। उनका जीवन और विशेष रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ उनके लड़ने की कला को बुन्देलखण्ड ही नहीं बल्कि पूरा भारत हमेशा याद रखेगा।

बर्ता कासरस
(4 मार्च 1972 - 3 मार्च 2016)

अपने विद्यार्थी जीवन के आंदोलन में ही उन्होंने हांडूरस में आदिवासियों के अधिकारों के समर्थन में 'हाइरस के लोकप्रिय एवं मूलनिवासी परिषद्' की स्थापना की। जंगलों को नष्ट करने वाले प्लान्टेशन मालिकों के खिलाफ, आदिवासियों की पूजा स्थल लेंका जमीन पर अमरीका के सेना द्वारा कब्ज़ा करने के खिलाफ, आदिवासी क्षेत्रों में संसाधन की लुट के खिलाफ, बन रहे बड़े बांध के खिलाफ आंदोलनों को संगठित किया। साथ ही वह महिला आंदोलन की बड़ी समर्थक रही, समलैंगिक साथियों के यानि जिन्हें अपने ही लिंग के लोगों के प्रति आकर्षण है, ऐसे साथियों के अधिकारों को समर्थन करती आदिवासी मूलनिवासी समुदायों के मुद्दे और अन्य विस्तृत सामाजिक मुद्दों को वह जनहित में बार-बार उठाती।

2006 में स्थानिय लेंका आदिवासियों के क्षेत्र में अंतराष्ट्रीय पूंजी संस्थाओं द्वारा बाँध बनाने का निर्णय लिया। बनाये जा रहे डैम की वजह से स्थानिक लेंका आदिवासी समुदायों के पानी पर अधिकार, भोजन, प्राकृतिक दवाईयाँ, और सम्पूर्ण जीने के पारम्परिक तरीकों पर प्रभाव होने वाला था, जो उनके अस्तित्व को ही खत्म कर देता। बर्ता कासरस ने स्थानिक आदिवासी समुदायों के साथ मिलकर इस डैम के खिलाफ आंदोलन को संगठित किया। उन्होंने लोगों की बड़ी जनसभा आयोजित की और साथ ही कानूनी लड़ाई भी शुरू की। ये मुद्दा वह मानवाधिकार आयोगों तक ले गयी।

अपने आंदोलनों की वजह से वह अंतराष्ट्रीय पूंजीवादी कंपनियों के लिए बाधा बन गयी थी। 2 मार्च 2016 को पूंजीवादी गुंडों ने उनपर हमला किया, गोली लगने से 3 मार्च 2016 को वो शहीद हुई। बर्ता की शहादत आज भी बाँध, खनन और विस्थापन विरोध आंदोलनों को मजबूती दे रही है। बर्ता के संघर्ष को हाइरस के साथ अन्य देश के आदिवासी आगे लेकर जा रहे है।

बिनोदिनी दासी
(1862 - 12 फरवरी 1941)

'नोटी बिनोदिनी' नाम से मशहूर इस नाटक अभिनेत्री एवं गायिका का जन्म 1862 में कलकत्ता के एक यौनकर्मियों के परिवार में हुआ। 12 साल की उम्र से ही आर्थिक तंगी के चलते उनको अपने पारिवारिक पेशे में लगना पड़ा। ऐसे में, 'ग्रेट नेशनल थिएटर' दल के नामी कलाकार, गिरीश घोष उनसे मिले और उनके कला से प्रभावित होकर, उन्हें मंच पर ट्रेनिंग देना चालू किये। कुछ ही समय में, बिनोदिनी पूरे देश की एक बेहतरीन अभिनेत्री बन उठी। अगले 12 साल में उन्होंने 80 नाटक प्रस्तुतियों में 90 के करीब किरदार निभाए। एक-एक प्रस्तुति में तो वे 5-6 तक भूमिकाएं अदा करती! बड़े-बड़े स्वतंत्रता सेनानी, आधात्मिक गुरु और साहित्यकार उनके अभिनय से प्रभावित हो जाते। दोरंगा नीतियों को लेकर चलने वाला समाज जो महिलाओं को, ख़ास कर यौनिक सेवाएं बेचने वाली महिलाओं को ख़राब और निचला मानती है, थिएटरों में टिकट काट कर उन्हें देखने आती, उन्हें सम्मानित करती। अभिनय जगत में बहुत समय तक महिलाओं का घुसना मना था। पुरुष ही महिलाओं के किरदार निभाते। पर बिनोदिनी की लोकप्रियता इस हद् तक बढ़ी, कि वे महिला चरित्रों के साथ-साथ पुरुषों का रोल भी निभाने लगी। पुरुष प्रधान एक पेशे में पुरुषों को टक्कर देना और कई माईने में उनसे आगे निकल जाना तो कोई बिनोदिनी से सीखे!

बिनोदिनी अपने अतीत की सच्चाईयों से कभी नहीं भागती, उल्टा अभिनेता जगत में उनके योगदानो के चलते, कई मामूली घरों की प्रतिभाशाली महिलाओं को आगे बढ़ कर अपनी पहचान बनाने का मौका मिला। नाटककार, संगीतकार, लेखिका, गायिका इत्यादि के रूप में उन्होंने काम किया। जब फिल्मों के आने के साथ साथ रंगमंच और नाटक कम्पनी बंद होने लगे, तब बिनोदिनी और तारासुन्दरी, अन्नूरबाला, तिनकौरीबाई जैसी अभिनेत्रियों की टोली ने ही कभी अपनी जमा पूँजी लगाकर, कभी अपने दर्शकों और चाहने वालों से संसाधन जोड़ कर, उन मंचों को ख़तम होने से बचाया, नए थिएटर खड़े किये। बिनोदिनी ने कई किताबें, कवितायेँ और नाटक भी लिखे जिनमें उन्होंने अपनी जीवनी और उस ज़माने के सामाजिक, राजनैतिक और ख़ास कर महिलाओं की परिस्थितियों को अंकित किया। क्या हम भी ऐसी प्रतिभाशाली महिलाओं को हमारे चारों ओर नहीं देखते?

चकाली इलम्मा
(19 सितम्बर 1919-10 सितम्बर 1985)

तेलंगाना बहुत समय तक हैदराबाद के निज़ाम के कब्जे में रहा। तेलंगाना की ज़मीन पे काम तो वहां के मज़दूर ही करते थे पर ज़मीन उनके नाम नही थी। वो ऊंची जाति के ज़मींदारों के नाम थे, जो निज़ाम के वफादार थे। इन ज़मींदारों के हाथों मज़दूर का भारी शोषण होता था। चकाली इलम्मा ने पहली बार इन ज़मींदारों के खिलाफ अपने हक़ की ज़मीन के लिए लड़ाई लड़ी और जीती। उन्हीं जैसे साथियों के चलते भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन से तेलंगाना में सशस्त्र आंदोलन शुरू हुआ और वहां भारी मात्रा में भूमि सुधार, भूमि अधिकार और दलित-बहुजन साथियों की सत्ता स्थापित हुई।

चकाली इलम्मा के जाति के लोगों को ज़मींदारों के घर धोबी का काम करना पड़ता। इसलिए शुरू में उन्होंने जब जमींदार कोंडाला राव से 40 एकड़ ज़मीन का पट्टा लिया, तो सभी बहुत आश्चर्य हुए। एक बंधुआ मजदूर, एक नीची जाति की महिला अपने नाम से ज़मीन रखेगी और जोतेगी–यह कैसे संभव था? यह ज्यादा पुरानी बात नहीं, देश तब अंग्रेजों से आज़ाद हो चुका था। गांव के पटवारी और प्रशासन में बैठे ऊंची जाति के लोग उनके पीछे पड़ गए, उनसे ज़मीन छीनने के लिए। उनपर फर्जी मुकद्दमे हुए। उनके पति पर हमले हुए, उनकी बेटी का बलात्कार किया गया। बदले में चकाली ने उन्ही के जैसे भूमिहीन साथियों को इकठ्ठा कर, उनके सबसे बड़े विरोधी, गाँव के पटवारी के घर को तोड़ के उसी ज़मीन में मकई बुन दिया। वह मकई का खेत सर्वहाराओं के संघर्ष का प्रतीक बन उठा। चकाली इलम्मा के नेतृत्व में हज़ारों दलित बहुजन साथी एक होकर जल-जंगल-ज़मीन की लड़ाई लड़े और निजामी एवं ज़मींदारी प्रथा खत्म करने में सफल रहे।

सिर्फ संसाधन के बंटवारा पर ही नहीं, पुरुषों की सत्ता और जातिवाद के खिलाफ भी चकाली ने आंदोलन चलाया। ऊंची जाति की महिलाएं कैसे जातिवाद और पुरुष-सत्ता की जकड़ में आकर बाकी महिलाओं का शोषण करती हैं, उस पर भी वे खुल के बात रखती थीं। 10 सितम्बर, 1985 में अपने जन्मदिन पर ही चकाली का निधन हुआ। आज भी तेलंगाना के घर घर में उनकी कहानी मशहूर है।

क्या आपको लगता है कि ज़मींदारी प्रथा आपके इलाके में खत्म होनी चाहिए या हो चुकी है? इसे खत्म करने के लिए कैसे संघर्ष करना होगा?

दुर्गावती

(5 अक्तूबर 1524-24 जून 1564)

रानी दुर्गावती एक आदिवासी वीर योद्धा के रूप में जानी जाती हैं उनका जन्म 1524 में कालिंजर किले में कीर्तीसिंग चंदेल नामक परिवार में हुआ। उनकी विवाह उनके जनजाति के बाहर दलपत शाह से हुई। वह एक महिला वीरांगना थी, जिन्होंने बचपन से ही राजकीय एवं शारीरिक शोर्य में रूचि दिखाई थी। उसी के कारण उनके माता पिता ने उन्हें घुड़सवारी, तीर तथा अन्य शस्त्रों को चलाने की तालीम भी दी थी। वह शिकार करने में भी रुचि रखती थी। उनके राज्य का नाम गढ़मंडला था। विवाह के चार वर्ष बाद दुर्गावती के पति की मृत्यु हुई। दुर्गावती ने उनके पति के अचानक मृत्यु के बाद, गोंडवाना राज्य को एक संरक्षक के रूप में 15 साल तक संभाला। उनके राज्य पर मुगलों तथा अन्य ताकतों द्वारा कई बार हमले हुए और दुर्गावती उन सबको डट कर मुकाबला देती रही। उनके कार्यकाल में उन्होंने राज्य में किसान के प्रश्न, पानी के लिए नए कुओं एवं पुराने कुओं में सुधार, जमीन तथा राज्य में कोष इत्यादि सुविधा की देखभाल वह स्वयं करती थी और गोंडवाना राज्य को स्वावलंबी बनाने की कोशिश करती रही। उनके कार्यकाल में उनके पुराने दुश्मनों ने मुगलों को साथ दिया और दुर्गावती की गुप्त योजनाओं की जानकारी उन्हें दी।

आसफ खां के नेतृत्व में गोंडवाना पर हमला हुआ। एक बार तो आसफ खां पराजित हुआ, पर अगली बार उसने दुगुनी सेना और तैयारी के साथ हमला बोला। दुर्गावती के पास उस समय बहुत कम सैनिक थे। उन्होंने जबलपुर के पास नरई नाले के किनारे मोर्चा लगाया तथा स्वयं पुरुष भेष में युद्ध का नेतृत्व किया। इस युद्ध में 3000 मुगल सैनिक मारे गये लेकिन रानी की भी अपार क्षति हुई थी।

जबलपुर के पास जहां यह ऐतिहासिक युद्ध हुआ था, उस स्थान का नाम मदन महल किला है, जो मंडला रोड पर स्थित है, वहीं रानी की समाधि बनी हैं। इतिहास में उनका नाम हमेशा उजागर किया जायेगा। वह एक प्रेरणा है आदिवासियों तथा अन्य शोषित समुदायों के लिए।

फमिला

(7 नवंबर 1980 - 16 जुलाई 2004)

फमिला एक ट्रांसजेंडर महिला थी। यानी जन्म पर उन्हें पुरुष चिन्हित किया गया था पर फमिला का मानना था की वह महिला थी। वह अपने आप को हिजरा कहती थी और साथ ही वह उभयलैंगिक थी। इसका मतलब है कि उन्हें महिला और पुरुष दोनों से प्यार था। फमिला एक यौन कर्मी भी थी। उनका कहना था की यौन कर्म भी एक तरह का काम है, उस में भी मेहनत और ईमानदारी चाहिए होती है। इसलिए उससे शर्माना या उसे छुपाना नहीं चाहिए। उनके हिसाब से इस पेशे की महिलाओं को भी श्रमिकों के सारे अधिकार और बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए।

गुरु रेवती की चेली फमिला खुशनसीब थी कि उन्हें अंग्रेजी शिक्षा हासिल हुई थी जिसका उपयोग वह राष्ट्रीय, अन्तराष्ट्रीय मंचों पर ट्रांसजेंडर लोगों और समलैंगिक व्यक्तियों की बातों को रखने के लिए करती। समलैंगिक वह लोग होते हैं जो लड़का होक लड़के से ही प्यार करते हैं या लड़की होकर लड़की से। पुरुषों की सत्ता के चलते, बाकी जगहों की तरह यहाँ भी समलैंगिक पुरुषों के हकों की बात ज्यादा होती थी। फमिला समलैंगिक महिलाओं की बातों को आगे लेकर आई। फमिला ने लिंग आधारित अधिकारों के आंदोलन के लिए कई कार्यक्रम किए-फिल्म बनाया, चंदा इकठ्ठा किया। समुदाय को एक साथ लाया। मुश्किल की घड़ी में बहुतों का साथ दिया। फमिला के घर में अलग अलग पहचान के ट्रांसजेंडर साथी रहते। कुछ उन्ही के जैसे जो जन्म पर पुरुष माने गए थे पर थी महिलाएं और कुछ ऐसे भी जो जन्म पर महिला निर्धारित हुए थे पर वे अपने आपको पुरुष मानते थे। ऐसे लोगों को अक्सर ट्रांस मर्द या ट्रांस पुरुष भी कहा जाता है। उन दिनों हिजरा समुदाय में इनको समान दर्जा नहीं दिया जाता था, फिर भी फमिला इनके लिए अपनी समुदाय से भी लड़ती।

खुद सब के लिए लड़ती, पर थी बड़ी अकेली। न समाज उसे इज्जत देता, न जिस परिवार में उन्होंने जनम लिया, वह उनसे रिश्ता रखना चाहते थे। 2004 में केवल 24 साल की उम्र में इस गैरबराबरी से भरे समाज और व्यवस्थाओं की शिकार हुई फमिला। डॉक्टरों ने कहा कि उन्होंने आत्महत्या की थी पर हमारे लिए तो वह शहादत से कम नहीं था। हम सब फमिला और फमिला जैसे ढेर सारे ट्रांसजेंडर साथियों की मृत्यु के ज़िम्मेदार हैं। सोच कर बताएं, इस परिस्थिति को कैसे बदले?

फातिमा शेख
क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले
(3 जनवरी 1831 - 10 मार्च 1897)

करीब दो सौ साल पहले, 3 जनवरी, 1831 को महाराष्ट्र के सतारा जिला में सावित्रीबाई का जन्म हुआ। सावित्री बाई भारत की पहली शिक्षिका थीं जिन्होंने लड़कियों को पढ़ाने का प्रयास किया। बहुजन समाज की सावित्रीबाई का विवाह 9 साल की उम्र में जोतिबा फुले से करा दी गयी। जोतिबा प्रगतिशील सोच रखते थे। उन्होंने अपनी पत्नी को पढ़ाया और दोनों ने 1848 में अपने दोस्त, फातिमा शेख, एक मुसलमान सामाजिक कार्यकर्ता एवं शिक्षिका के साथ मिलकर, देश का पहला ऐसा स्कूल खोला, जिसमे हर जाति की लड़कियाँ पढ़ सकती थीं। यह स्कूल फातिमा और उसके भाई उस्मान शेख के घर से चलता था। याद रखिए, यह उस ज़माने की बात है, जब लड़कियों और दलितों की पढ़ाई पर रोक थी। एक पढ़ी-लिखी पिछड़ी जाति की महिला शिक्षिका को देख, समाज के लोग भड़क जाते और उन्हें रोकने की कोशिश करते। जब वे पढ़ाने जातीं, तो रास्ते में उन पर कीचड़, गोबर, चप्पल फेके जाते। फिर भी वह डटी रही। जब पूरे हिन्दू समाज ने सावित्रीबाई और ज्योतिबा को मोहल्ले से निकाल दिया, तब उनकी सहेली, फातिमा शेख ने ही उनको अपने घर में जगह दी।

फातिमा खुद भी लोगों के दुत्कार सुनते हुए घर घर जाती, ख़ास कर मुसलमान बस्तियों में। लोगों कों अपने बेटियों को पढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती, लड़कियों को एक स्वतंत्र, सम्मानजनक ज़िन्दगी जीने के लिए प्रेरित करती। कुछ ही सालों में दोनों सहेली, सगुनाबाई, ज्योतिबा और उस्मान जैसे अन्य क्रांतिकारियों के साथ मिल कर 18 ऐसे स्कूल खोल लिए अलग अलग मोहल्लों में।

हमारे देश में सदियों से चली आ रही दलित-बहुजन और मुसलमान समुदायों के बीच की दोस्ती और एकता की प्रतीक हैं सावित्रीबाई और फातिमा शेख। सावित्रीबाई और फातिमा सार्वजनिक शिक्षा को जाति उन्मूलन और शोषण-मुक्ति का हथियार मानते थे। वे समझते थे कि सही शिक्षा वह है जिससे हमारे विचार खुलते हैं और हमें जाति-लिंग-धर्म के भेदभाव के खिलाफ लड़ने की शक्ति मिलती है।

क्या आप भी यह मानते हैं?

इवाना होफमैन

(1 सितंबर 1995 - 7 मार्च 2015)

19 साल की क्रांतिकारी गुरिल्ला (छापामार) योद्धा थी, जो साम्राज्यवादी सत्ता और आईसिस (एक कट्टरपंथी आतंकवादी गुट) के खिलाफ उत्तर सीरिया के कुर्दिस्थान के क्षेत्र में लड़ते हुए शहीद हुई।

इवाना अफ्रीकन मूल से थी और पच्छिमी जर्मनी में रहती थी। वह पहली जर्मन महिला है जो जर्मनी से कुर्दिस्थान के मुक्ति संघर्ष में लड़ने के लिए गयी। बहुत ही छोटी उम्र में वो जर्मनी से तुर्की गयी वहां से वह सिरिया गयी।

इवाना को 2011 में पहली बार तुर्की-कुरदीश कम्युनिष्ट ग्रुप की मार्क्सवादी लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी (एम.एल.के.पी.) के बारे में पता चला। बड़े ही लम्बे समय से कुर्दिस्तान में मुक्ति संघर्ष चल रहा है। स्वतंत्रता के साथ-साथ पुरुष-प्रधान को खत्म कर समतामूलक समाज के निर्माण करना चाह रहे थे, वहां के लोग कुर्दिस्तान के विभिन्न इलाकों में महिलाओं के गुरिल्ला दस्ते शोषक साम्राज्यवादी ताकतों और आईसिस के खिलाफ आज भी लड़ रहे हैं। रोजावा क्षेत्र में गुरिल्ला सेना ने कब्जा कर उसे 2012 में मुक्त कर लिया। रोजावा की 'क्रांति को बचाए' रखने के लिए और 'पार्टी के झंडे को हमेशा उंचा रखने' के लिए 'मैं रोजावा जा रही हूं' यह शपथ लेकर इवाना पार्टी के साथ जुड़ी।

इवाना होफमैन अपने गुरिल्ला साथियों के बीच अवासिन तेकोसिन गुनेस के नाम से जानी जाती थीं। 2015 के मार्च में इवाना जन सुरक्षा दस्ते (वाय.पी.जी.) और आईसिस के हमलावरों के बीच मुठभेड़ हुआ। जिसमें कुरदीश महिला लड़ाकू दस्ते ने आईसिस के हमलावरों को मार गिराया। इस मुठभेड़ में 7 मार्च के सुबह के 3 बजे इवाना दुश्मन की गोली लगने से शहीद हो गयी।

इवाना कुर्दिस्तान में चल रहे मुक्ति संघर्ष की एक अंतराष्ट्रीय प्रतिमा के तौर पर उभरकर आयी। दुनियाभर में पितृसत्ता-पूंजीवाद-साम्राज्यवाद शोषण के खिलाफ चल रहे सारे मुक्तिसंघर्ष एक दूसरे से जुड़े हैं और एक वैश्विक संघर्ष ही मुक्ति की और लेकर जायेगा इस सोच का प्रतिक बनी इवाना।

मनोरमा

मनोरमा मणिपुर की रहने वाली 32 साल की एक आम महिला थी। जुलाई 11, 2014 की बात है। आसाम राइफ़ल्स के जवान सादे कपड़े में उन के घर घुसे, और मनोरमा एवं उनके परिवार वालों को बुरी तरह मार पीट कर मनोरमा को वहां से गाड़ी में उठा ले गए। अगले ही दिन मनोरमा की लाश बिना कपड़ों के और गोलियों की छेद से भरी पायी गयी। डाक्टरी जांच से पता चला कि उनको छुरी से घायल किया गया था। उनके गुप्तांग में 16 गोलियों के निशान थे और उनका बलात्कार भी हुआ था। सेना के बेबुनियादी और बदलते हुए बयान के मुताबिक़ वह एक आतंकवादी दल की सदस्य थी। यह आरोप कभी साबित नहीं हो पाया।

उन दिनों आफ्सपा नामक एक खतरनाक क़ानून मणिपुर में लागू था जिसके चलते फ़ौज को ख़ास ताक़तें और छूट मिली हुई थी और जिसके तहत उन्होंने मनोरमा को उठाया था। अब वह किसी को भी केवल शक के बुनियाद पर पूछताछ या गिरफ्तार कर सकते थे, घर की कभी भी तलाशी ले सकते, किसी पे भी गोली चला सकते हैं। कोई कानूनी प्रक्रिया नहीं, कोई जवाबदेही नहीं। कानून और देश के रखवालों द्वारा इस कानून का काफी दुरुपयोग हुआ। बहुत सारे लोग फर्जी केसों में आज भी फंसे हुए हैं, या तो फर्जी एनकाउंटर में मार दिए गए है। बहुत लापता भी है। कई सारी महिलाओं पर यौनिक उत्पीड़न और बलात्कार तक हुआ। ऐसे में मनोरमा के उस निर्मम हत्या ने मणिपुरी समाज में, ख़ास कर महिलाओं में संघर्ष की एक लहर पैदा की। 15 जुलाई को 12 मणिपुरी महिलाएं कांगला किले के बाहर निर्वस्त्र होकर चीखने लगी ''भारतीय सेना! आओ हमारी हत्या करो। हमारा बलात्कार करो।'' इस चित्र ने पूरी दुनिया के विवेक को झकझोर कर रख दिया। आफ्सपा जैसे कानूनों के खिलाफ और सेना-पुलिस के अत्याचारों के विरोध में बड़ा आंदोलन चालू हुआ। इरोम शर्मीला 16 साल भूख हड़ताल पर बैठी इस क़ानून के खिलाफ। आफ्स्पा आज भी मणिपुर में लागू है। कश्मीर, नागालैंड, असम, अरुणाचल, जैसे सरकार को चुनौती देने वाले हर इलाके में भी आफ्स्पा लागू है, देश के अन्य इलकों में यू.ए.पि.ए. कानून लागू कर लोगों के आवजों को हिंसा से बदाया जा रहा है और आफ्स्पा जैसे ही और कानून अन्य राज्यों में लाये जा रहे हैं।

मनोरमा के कातिल आज भी आज़ाद घूम रहे हैं। सेना में नौकरी करके देश प्रेम का खिताब जीत रहे हैं। क्या यही है असली देश प्रेम!

मातंगिनी हाजरा
(19 अक्टूबर 1870-1942)

कल्पना कीजिये सितम्बर महीना, सन 1942। बंगाल के मिदनापुर जिले के तामलुक पुलिस थाने पर सेना तैनाद थी। दूर से एक और फ़ौज चली आ रही है। उनके बदन पर घर पर बुने खादी के कपड़े, हाथ में तिरंगा, ज़बान पर 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा और दिल में आजादी की आग थी। यह किसी राजा-बादशाह या ज़मींदार की फ़ौज नहीं, मेहनतकश लोगों की टोली थी—कोई छोटा दुकानदार, कोई टीचर, कोई किसान, कोई घर की बहू। अंग्रेजों की हुकूमत, और अंग्रेजी पुलिस के हाथों जनता का अत्याचार उनसे अब सहा नहीं जा रहा था।

पुलिस ने चेतावनी दी पर जुलुस के साथी पीछे हटने के मन से नहीं आये थे। पुलिस सेना ने उनके तरफ अपनी बंदूकें तान दी। यह देख, जुलूस में से एक बूढ़ी महिला आगे आई और उसने पुलिस से अनुरोध किया की, वे सब अहिंसक लड़ाई लड़ रहे है, उन पर हमला न किया जाए। पर उस महिला को यूँ बिना डरे आगे आते देख पुलिस कर्मी डर गए और उनपर गोली चला दी। गोली सीने के आर पार हो गयी पर वह रुकी नहीं, चलती रही। अब तक तो गोलियों की बरसात होने लगी थी, पर लोग डटे रहे। वह 73 साल की बूढ़ी महिला जो उनका नेतृत्व कर रही थी उनका नाम था मातंगिनी हाजरा। घटना के बाद खून से लथपथ उनकी लाश बीच रास्ते में पढ़ी हुई मिली। उनकी सांसें रुक चुकी थी पर हाथ में तिरंगा तब भी लहरा रहा था।

मातंगिनी मांइती का जन्म मिदनापुर में 19 अक्टूबर 1870 में हुआ। कच्ची उम्र में 60 साल के त्रिलोचन हाजरा से उनकी शादी करा दी गयी और 18 वर्ष की उम्र तक आते आते वह विधवा भी हो चुकी थी। 1905 में गाँधीजी से प्रभावित होकर मातंगिनी अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने लगी। अपने जिले के अन्य महिलाओं को आंदोलन से जोड़ने में भी उनका बड़ा हाथ रहा उनका। कई सारे प्रतिरोध कार्यक्रमों में वह हजारों पुरुषों के बीच एकमात्र महिला के रूप में दिखाई पढ़ती थी, अपनी करतूतों के लिए उन्हें कई बार जेल भी जाना पडा था। छोटी सी, दुबली सी मातंगिनी पुलिस और सिपहिओं को चकमा देकर कई बार उनके कार्यक्रमों में बाधा डालती थी। वह पढ़ी लिखी नहीं थी, शरीर से और आर्थिक तथा सामाजिक रूप से भी कमज़ोर थी, फिर भी अँगरेज़ सिपाही उनके तेज़ दिमाग और बुलंद इरादों के सामने घबराते थे।

मातंगिनी के जजबे को, उनके ज़िन्दगी भर के संघर्ष को और उन्ही की तरह आजादी की जंग में घायल हुई हर महिला को हमारा सतरंगी सलाम!

मोसमात बुधिया

मोसमात बुधिया पूर्वोत्तर बिहार के अररिया में रहने वाली एक मुसलमान महिला थी। उस समय अंग्रेजों द्वारा नील की खेती जबरदस्ती करायी जाती थी। जमीनदारों से थोपी गयी नील की खेती और दमनकारी अंग्रेजी राज के बीच में मजदूर-किसान पिस रहे थे। न तो उन्हें उनकी मेहनत का फल मिलता था, और ऊपर से पूरी फसल न होने पर लगान भी चुकाना पड़ता था। जबरदस्ती करायी जा रही इस नील की खेती के कारण, मजदूर-किसान अपना पेट भरने लायक खेती तक नहीं कर पा रहे थे। परेशान मजदूर-किसान अक्सर मोसमात बुधिया के पास आकर अपनी पीड़ा सुनाते थे। पीड़ा सुनकर, मोसमात बुधिया ने एक तरकीब निकाली। उन्होंने गाँव के सभी मजदूर-किसानों से नील के सारे बीज अपने पास रखवा लिए। रात के अँधेरे में उन्होंने आधे बीजों को भुन कर ख़राब कर दिया, और उन्हें अच्छे बीजों में मिलाकर लौटा दिया। सबकी सुरक्षा के लिए उन्होंने यह तरकीब अपने तक ही रखी।

तीन सालों तक यह सिलसिला चलता रहा। लेकिन जब इलाके में नील की फसल साल-दर-साल घटने लगी तब अंग्रेजों ने छानबीन शुरू कर दी। तब उन्हें यह तो पता चल गया कि बीज मोसमात बुधिया के पास जमा होते हैं, लेकिन आगे क्या होता है यह वो नहीं जान पाए। मोसमात बुधिया को अँगरेज़ दरबार में पूछताछ के लिए बुलाया गया। मोसमात बुधिया ने बिना डरे सब बता दिया और पूछा, "अगर आपके बच्चे भूखे मर रहे होते या आपकी ज़मीन बंजर कर दी जा रही होती, तो क्या आप भी ऐसा नहीं करते?" मोसमात बुधिया की सूझबूझ और हिम्मत ने अंग्रेजों को झुकने पर मजबूर कर दिया, जिसके कारण इस इलाके में नील की खेती बंद कर दी गयी।

नांगेली

करीब तीन सौ साल पहले, केरल में एक ऐसी लगान (कर) थी जो दलित महिलाओं को अपने स्तन ढंकने के लिए देनी पड़ती थी। उस दौर में दलित महिलाओं का स्तन ढकना सवर्णों के लिए अपमान माना जाता था। यह प्रथा सवर्ण पुरुषों द्वारा दलित महिलाओं के यौनिक शोषण को बढ़ावा भी देती थी। राजा के अफसर घर घर जाकर ये लगान वसूल करते थे, और जिसका जितना बड़ा स्तन होता था, उसे उतना लगान देना पड़ता था। केरल के चेरतला इलाके में रहने वाली नांगेली एक संघर्षशील दलित महिला थी। उसे भी यह लगान देनी पड़ती थी, जो उसे अपमानित और आक्रोशित करती थी। एक दिन, तंग आकर, उन्होंने तय किया कि वह इस प्रथा का विरोध करेगी। अगली बार जब राजा का अफसर लगान वसूल करने आया, तब नांगेली ने केले का एक पत्ता बिछाया, उसपर दिया जलाया, और कछिया (हसिया) से अपना स्तन काटकर लगान की बजाय उसे पत्ते पर रख दिया। अपना स्तन काटकर नांगेली शहीद हो गयी। लेकिन आज भी महिलाओं के शरीर पर होने वाले पित्रसत्तात्मक और जातीय दमन के खिलाफ हो रही लड़ाई में वह एक नायिका बनकर जी रही है।

न्वान्येरुवा और ईग्बो महिलाओं की फ़ौज

हमारे यहाँ के कई आदिवासी समुदायों की तरह पश्चिम अफ्रीका के इग्बो समुदाय में महिलाओं का काम घर के बाहर का था और पुरुषों का घर के अन्दर। महिलाएं इलाके की न्यायपालिका, अर्थव्यवस्था और राजनैतिक प्रक्रियाओं में पुरुषों के संग कंधे से कंधा मिला के हिस्सा लेती। एक आदर्श दुनिया की तरह सुनने में इन गाँव में जब अंग्रेज़ घुसे, तो उन्होंने सब तहस नहस कर दिया। बाज़ार पे कब्ज़ा कर महिलाओं को घर की चार दीवारों में धकेल दिया। एक ही परिवार में महिला पुरुष पे अलग अलग टैक्स लगा के उनको आर्थिक रूप से कमज़ोर बना दिया। पारंपरिक गाँव स्तरीय न्याय-मंचों की जगह हर गाँव में एक मुखिया निर्धारित कर दिया जो सरकार के लिए टैक्स वसूली करते।

अक्टूबर 1930 में ऐसे ही एक अंग्रेजों द्वारा निर्धारित मुखिया न्वान्येरुवा के घर गए उनसे टैक्स वसूली करने। अपने देश में अपने ही संसाधनों पे विदेशियों का राज क्यों मज़बूत किया जाए, यह न्यान्येरुवा को समझ नहीं आ रहा था। उन्होंने टैक्स चुकाने से मना कर दिया। उन्हें देख बाकी महिलाओं ने भी हिम्मत की। कुछ ही दिनों में 10,000 महिलाओं ने मुखिया के कार्यालय का घेराव किया और उनसे लिखित में आश्वासन मांगा कि वे महिलाओं से टैक्स नहीं वसूलेंगे। कई दिन के धरने के बाद उनकी मांग पूरी हुई पर इस दौरान अपनी दबंगाई दिखाते हुए मुखिया ने बहुत महिलाओं को बंदी बनाकर रखा, कईयों के साथ दुर्व्यवहार किया। इसी कारण, टैक्स माफ़ी की जीत हासिल करने के बाद भी महिलाएं धरने पे बैठी रही। दो दिन के अन्दर ही अंग्रेज़ सरकार को झुकना पड़ा। उस मुखिया को काम से निकला गया और उनको दो साल की जेल हुई।

अहिंसा से जीती गयी इस लड़ाई ने बाकी इग्बो महिलाओं को जैसे उनका खोया हुआ आत्मसम्मान लौटा दिया। पूरे इलाके में ऐसे संघर्ष फैल गए। अपने पारंपरिक प्रथाओं के अनुसार भ्रष्ट अधिकारियों के घर को घेर कर कई दिनों तक महिलाएं हल्ला करती, उनसे माफ़ी मंगवाती, उनको सज़ा सुनाती। नाच गाना इन प्रतिरोध कार्यक्रमों का अहम् हिस्सा हुआ करता था। पुलिस की लाठी-गोलियों का सामना भी महिलाएं हँसते हुए करती। अंत में, अंग्रेज़ सरकार को यह मुखिया व्यवस्था ख़तम करनी पढ़ी। गाँव में काफी हद तक स्वराज और शांति लौट आया। 1960 में लोगों के संघर्षों के चलते अंग्रेजों को वह इलाका छोड़के भागना पड़ा। गाँव की बुज़ुर्ग, न्वान्येरुवा की एक मनाय से यह पूरा किस्सा शुरू हुआ था।

कर्नल पेट्रा पेद्रो हेरेरा और उनके क्रांतिकारी साथी

अब मिलते हैं पेट्रा पेद्रो हेरेरा से। मेक्सिको की इस क्रांतिकारी महिला ने अपने आप को पुरुष भेष में बदल कर मेक्सिकन क्रांति की फौज में शामिल किया। इस दौरान उन्होंने बड़ी हिम्मत से जोखिम भरे काम किये, और पुरुषों से भी अच्छी सैनिक बनकर उभरीं। जब उनके काम की तारीफ होने लगी तब उन्होंने अपना महिला होना ज़ाहिर किया। बेहतरीन सैन्य कौशल और नेतृत्व दिखाने के बावजूद, फौज में उनकी पदोन्नति नहीं की जा रही थी। क्रांतिकारी फौज में भी होने वाली पित्रसत्ता के विरोध में पेट्रा पेद्रो हेरेरा ने महिलाओं की एक फौज बनायीं जिसने मेक्सिकन क्रांति में महिलओं की भूमिका को केन्द्रित किया। लेकिन पेट्रा पेद्रो हेरेरा अकेली ही ऐसी महिला नहीं थीं। पेट्रा पेद्रो रुईज़, जिन्हें एचा बलास (गोली) के नाम से जाना जाता था, अपने गुस्से, ताकत और गोली के सटीक निशाने के लिए मशहूर थीं। एक बार जब पुरुष सैनिक आपस में एक बच्ची के शरीर को हासिल करने के लिए झगड़ रहे थे, तब पेट्रा रुईज़ ने पुरुष के भेष में अपने बल पर बच्ची को जीत लिया और उसे सुरक्षित जगह ले जाकर बलात्कार के ख़तरे से आज़ाद किया। ऐसी ही एक और क्रांतिकारी लड़की थी एलिज़ा ग्रिएन्सेन, जो केवल 15 साल की थी जब उसने अमरिकी फौज के खिलाफ अपने शहर की महिलाओं को संगठित किया, इन संगठित महिलाओं ने फिर अमरिकी फौज को घेरकर पत्थरबाज़ी की। इन सारी महिलाओं ने न सिर्फ पित्रसत्ता को चुनौती दी, बल्कि साम्राज्यवादी, पूंजीवादी और उपनिवेशवादी ताकतों को भी जड़ से हिला दिया।

फूलन देवी

(10 अगस्त 1962 - 12 अप्रैल 2001)

उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गाव गोरहा में जन्मी यह महिला शुरू से ही जातिगत भेदभाव का शिकार रही। लेकिन 11 साल की उम्र में फूलन की जिंदगी में एक बड़ा बदलाव आया, जब उसके चाचा मायादीन ने फूलन की शादी एक बूढ़े आदमी पुट्टी लाल से करवा दी, जिसकी वजह से उनके गांव से बाहर जाना पड़ा। फूलन इस उम्र में शादी के लिए तैयार नहीं थी। शादी के तुरंत बाद ही फूलन देवी बलात्कार का शिकार हुई, जिसके कारण वह वापस अपने गांव भाग आई। गांव लौटकर फूलन देवी मजदूर माता पिता का हाथ बंटाने लगी। करीबन 15 साल की उम्र में फूलन देवी के साथ उच्च जातीय ठाकुरों ने गैंगरेप किया। इस घटना को लेकर फूलन न्याय के लिए दर-दर भटकती रही। इसी दौरान गांव में कुछ डकैतों ने हमला किया। और वह डकैत फूलन को उठाकर ले गए, उन्होंने फूलन का शारीरिक शोषण किया। कहीं से न्याय न मिलने पर फूलन ने बन्दूक उठाने का फैसला किया और वह डकैत बन गई।

इसके बाद फूलन की मुलाकात विक्रम मल्लाह से हुई और दोनों ने मिलकर डाकुओं का अलग गैंग बनाया। फूलन ने अपने साथ हुए अन्याय और शोषण का बदला लेने की ठान ली और 1981 में उच्च जाति के 22 लोगों को एक लाइन में खड़ा कर उन्हें गोलियों से छलनी कर दिया। इसके बाद चम्बल में फूलन का खौफ स्थापित हो गया। ऊंची जाति के जमींदारों और उनके गुंडों का खात्मा करने के लिए फूलन ने लगातार कार्यवाहियों को अंजाम दिया। फूलन को पकड़ने का आदेश जारी हुआ लेकिन उत्तरप्रदेश और मध्य प्रदेश की पुलिस फूलन को पकड़ने में नाकाम रहीं।

फूलन का साथी विक्रम मल्लाह पुलिस मुठभेड़ में मारे गए और इस के बाद मज़बूरी में फूलन ने सरेंडर किया। फूलन ने सरेंडर करते वक्त सरकार से अपनी शर्तें मनवाई, जिनमे उनकी पहली शर्त यह था कि उसे या उसके सभी साथियों को मृत्युदंड नहीं मिलना चाहिए। सभी शर्तों को सरकार ने मान लिया था। फिर भी 11 साल तक उसे जेल में रहना पड़ा। 1994 में समाजवादी पार्टी कि सरकार ने उसे रिहा किया। इसके बाद वह समाजवादी पार्टी से चुनाव लड़कर मिरजापुर से सांसद बनी और दिल्ली पहुँच गई। 2001 फूलन की जिंदगी का आखिरी साल रहा और इसी साल उच्च जाति के जमीदार गुंडे शेर सिंह राणा ने दिल्ली में फूलन देवी के आवास पर उसकी हत्या कर दी।

फूलन की लड़ाई निचली जाति से उभरी हुई महिला के सम्मान और खुद के रक्षा कर ब्राह्मणवादी पुरुष-सत्ता को चुनौती देने की लड़ाई है।

राजकुमारी गुप्ता

राजकुमारी गुप्ता भारत की आजादी के लिए लड़ रहे उन क्रांतिकारियों में से हैं जिनका नाम शायद ही सुना जाता है। 1902 में कानपुर में जन्मी राजकुमारी एक रूढ़ीवादी परिवार से थी। 13 साल की उम्र में उनकी शादी मदनमोहन गुप्ता से हुई जो प्रगतिशील सोच रखते थे और कांग्रेस की गतिविधियों में सक्रिय थे। शुरुआती दौर में दोनों पति और पत्नी पहले गाँधी से प्रभावित थे और उनके ही कहने पर आज़ादी के संघर्ष में शामिल हुए थे। बाद में वे चन्द्रशेखर आज़ाद, से भी प्रभावित हुए जिन्हें सशत्र विद्रोह से आजादी का मार्ग दिखता था। राजकुमारी गुप्ता समाजवादी सोच से जुड़ी और संसाधन के समान वितरण के लिए काम लड़ने लगीं।

उन्होंने कई बार अंग्रेज़ी राज के खिलाफ की लड़ाई के सन्देश और सामग्री, क्रांतिकारियों तक पहुंचाई, और यह काम वह अपने पति और ससुराल से छुपाकर करती। काकोरी मिशन एक ऐसी ही लड़ाई की योजना थी जिसका मकसद ट्रेन में जा रहे अंग्रेजों के खजाने को लूटकर आजादी की लड़ाई के लिए हथियार खरीदना था। इस मिशन में प्रयोग होने वाले हथियारों को राजकुमारी ने अपने अंगवस्त्रों में छुपाकर क्रांतिकारियों तक पहुंचाया था। आजादी की लड़ाई में पुरजोर भागीदारी के लिए और समाजवादी विचारधारा पर अमल करने के लिए राजकुमारी गुप्ता को हज़ारों सलाम।

रमाबाई

(7 फ़रवरी 1898 - 27 मई 1935)

त्याग, सम्मान, प्रेम, साहसी एवं संयम की प्रतिक रमाबाई आंबेडकर का व्यक्तित्व हमें समझने लिए डॉ. आंबेडकर के जीवन प्रवाह में छाकने में प्रतिबद्ध करता हैं। क्यू की रमाबाई के संपूर्ण समर्पण और मेहनत के सिवाय डॉ. आंबेडकर, हमारे लिए कुछ नहीं कर पाते इसलियें रमाबाई करोड़ों लोगों की माता हैं। उनका जन्म 1898 में गरीब परिवार में हुआ, बचपन में ही माँ-पिता का साथ छूट गया। कठिन परिस्थिति में उनका विवाह भीमराव (बाबासाहेब) इनसे हुआ तब बाबासाहेब 5वीं कक्षा में थे। डॉ. आंबेडकर उनका संपूर्ण शिक्षण पूरा कर पायें उसमे रमाबाई की भूमिका हमेशा ही सकारात्मक रही, ऐसा डॉ. आंबेडकर ने स्वीकार भी किए है। नये की तीन पुत्रों के निधन होने के बावजूद और गरीबी से जूझते हुए भी, रमाबाई ने डॉ. आंबेडकर को हमेशा सहायता ही की।

वो मेहनत करके घर चलाती थी, और उनकी कमाई बाबासाहेब के शिक्षा के लिए, खर्चे के लिए भेजती थी। वो बहुत साहसी एवं संयम स्वरूपी महिला एवं पत्नी बनी रही। उनका योगदान इस समाज के लिए शब्दों में बयान शायद नहीं हो पाये परंतु उनका त्याग एवं बाबासाहेब के सपनों को साकार करने में उनका महत्वपूर्ण सहभाग उनके मृत्यु तक रहा हैं। रमाबाई ने कभी खुद की दवा के लिए पैसो का खर्चा नहीं किया, उनका लक्ष यह डॉ. आंबेडकर के लक्ष में समाया हुआ था। इसी कारण पुत्र वियोग में उलझे न रहते हुए वह परिश्रम करती रही, और निस्वार्थ रूप से डॉ. आंबेडकर का साथ उन्होंने दिया।

उनकी मृत्यु टीबी जैसी बीमारी से हुई थी, इलाज के लिए पर्याप्त पैसा नहीं होने के कारण वह कम उम्र में ही चल बसी परंतु वो आज भी लाखो करोड़ों के लिए वंदनीय है।

रोजा लक्समबर्ग 5 मार्च 1871 - 15 जनवरी 1919
क्लारा जेटकिन 5 जुलाई 1857 - 20 जून 1933

रोजा लक्समबर्ग और क्लारा जेटकिन अंतराष्ट्रीय कम्युनिष्ट आंदोलन की महानतम नेत्रियां रही है। दोनों का मार्क्सवादी विचारधारा के विस्तार और मार्क्सवादी आंदोलन में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। दोनों ने अपना सम्पूर्ण जीवन महिलाओं, श्रमिक-मजदूरों को संगठित कर जनता की सत्ता स्थापित करने की लगातार कोशिश की, मार्क्सवादी इतिहास के विकास में सहभागी वो पहली महिला नेत्रियां है। जेटकिन और रोसा लक्समबर्ग दोनों ने वामपंथी संघर्ष को मजबूत बनाने में योगदान दिया। दोनों ने बहुत ही मजबूती से क्रांतिकारी आंदोलन में फूट डालने के लिए लाये जा रहे सुधारवादी और मध्यममार्गी विचारधारा का विरोध किया। जेटकिन और रोसा लक्समबर्ग ने अन्य साथियों के साथ मिल कर 1918 में जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की।

रोजा लक्समबर्ग का जन्म पोलैंड में हुआ। झुरीक में अपने पढ़ाई के दौरान से ही वे क्रांतिकारी प्रवाहों के साथ जुड़ी रही। वह 28 साल की उम्र में जर्मनी की नागरिक बनी। अपने राजनैतिक कम के शुरू में वो सोशल डेमोक्रेसी ऑफ़ द किंगडम ऑफ़ पोलैंड और लुथुनिया (एस.डी.के.पी.एल.), और जर्मनी की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी (एस.पी.डी.) से जुड़ी। पहले विश्व युद्ध के दौरान एस.पी.डी. ने जर्मनी के युद्ध में सहभाग का समर्थन किया, जिसके विरोध में रोजा लक्समबर्ग ने 1915 में स्पार्टाकस लीग की और बाद में, 1918 में जर्मनी की कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना की। 1919 की स्पार्टाकस उठाव के बाद जर्मनी के सरकार ने दमन तेज करा दिया। उसी हिंसक दमन के दौर में सरकार द्वारा आयोजित हथियारबंद दस्ता फ्रेयिकोर्प ने लक्समबर्ग को पकड़ा कर उन्हें बेहोश कर उन्हें गोली मार कर उनकी हत्या की। बाद में उनके शव को बर्लिन के पास के एक नहर में फेंक दिया। रोसा लक्समबर्ग ने तानाशाही पार्टी व्यवस्था और मध्यममार्गी समाजवादी तरीकों का जोरदार विरोध किया। पूर्व जर्मनी के क्रांतिकारी वामपंथी संघर्ष के साथ पुरे दुनिया के कम्युनिष्ट आंदोलन में एक महान नेत्री, एक महान शहीद के रूप में वो आज भी याद की जाती है।

क्लारा जेटकिन 1870 के दशक से जर्मनी के समाजवादी आंदोलन के साथ जुड़ी। वो अपने शुरुआती दौर से ही महिलाओं के अधिकारों के लिए जुझारू आंदोलन संगठित कर रही थी। महिला आंदोलन में काम करते वक्त वह बहुत आग्रह से यह बात रखती थी कि समाजवादी आंदोलन ही मजदुर एवं मेहनतकश

महिलाओं के मुक्ति का रास्ता है। वह एक प्रखर वक्ता के रूप में मशहूर थी। 1910 में क्लारा जेटकिन के नेतृत्व में कोपनहेगन में समाजवादी महिलाओं की पहली अंतराष्ट्रीय परिषद हुई, जिसमें 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाए, ये प्रस्ताव रखा गया था। इसके बाद हर साल मेहनतकश महिलायों के संघर्ष की याद में 8 मार्च को अंतराष्ट्रीय महिला दिवस पूरी दुनिया भर में मनाया जाता है। 1920 से 1933 तक जेटकिन ने जर्मनी के कम्युनिष्ट पार्टी (जिसे बाद में हिटलर ने प्रतिबंधित किया था) का प्रतिनिधित्व किया। जेटकिन ने शुरू से ही हिटलर और उनके फासीवादी नाजी पार्टी का विरोध किया। हिटलर और नाजी पार्टी का विरोध किया। 1933 में क्लारा का निधन हुआ। उनकी मृत्यु के बाद एक अखबार ने उन्हें साम्यवाद की दादी कहकर संबोधित किया। नाजी दमन के वजह से 1924 से अपनी मृत्यु तक उन्हें रशिया में रहना पड़ा।

रोजा पार्क्स

4 फरवरी 1913 - 24 अक्टूबर 2005

1 दिसम्बर 1955 की शाम को अश्वेत महिला दर्जीरोज़ा पार्क्स ने बस में अपनी सीट देने से इनकार कर दिया, और ऐसे शुरुआत हुई अमेरिका के नागरिक अधिकारों (सिविल राइट्स) के आंदोलन की। जब रोज़ा पार्क्स ने अपनी सीट देने से इनकार किया तब मोंटगोमरी इलाके के अश्वेत लोग बस में चढ़ने तक से कतराते थे। ये उस दौर की बात है जब अमेरिकी समाज में अश्वेतों के साथ श्वेत लोगों द्वारा रंग के आधार पर बहुत भेदभाव और शोषण किया जाता था। सख्त नियमों और क़ानूनों से अश्वेतों को मूलभूत सुविधाओं से दूर रखा जाता था। यहाँ तक कि बस में भी उन्हें सिर्फ पीछे की सीट पर ही बैठने की अनुमति थी, और वो भी उन्हें खाली करने को कहा जा सकता था अगर किसी श्वेत व्यक्ति को बैठना हो तो। रोज़ा पार्क्स को भी ऐसे ही सीट खाली करने को कहा गया, जिसका उन्होंने विरोध किया।

जब उनसे बाद में पूछा गया कि क्या थकान के कारण उन्होंने सीट नहीं छोड़ी थी, तो उनका कहना था, "मैं एक दिन की शारीरिक थकान से नहीं, बल्कि सदियों के भेद-भाव और दमन से थक गयी थी।" सीट से उठने से रोज़ा पार्क्स के इनकार करने के बाद बस में हंगामा हुआ, पुलिस बुलाई गयी और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी गिरफ्तारी ने पूरे मोंटगोमरी में हलचल मचा दी, और अश्वेत समुदाय ने बसों का बहिष्कार कर दिया और समानता का संघर्ष शुरू कर दिया। इस दौरान रोज़ा पार्क्स को काम से हटा दिया गया और उन्हें तरह तरह कें दमन को सहना पड़ा। लेकिन आज भी उन्हें अमेरिका के नागरिक अधिकार आंदोलन की नेत्री के रूप में याद किया जाता है।

"मालिक नहीं - साथी चाहिए, पति नहीं - सम्पत्ति चाहिए"
"चुप्पी तोड़ो, हिंसा रोको"
"आधी दुनिया नारी है, जमीन में दावेदारी है"
"शिक्षित हो... संगठित हो... संघर्ष करो... संघर्ष करो... "
"ट्रांसफोबिया (यानि जो महिला या पुरुष के सामाजिक परिभाषा में शामिल नहीं बैठते उनके प्रति घृणा की भावना रखना) धोखा है। धक्का मारो मौका है।"
"आज की नारी कैसी है? फूल नहीं चिंगारी है।..."
"महिला शक्ति आयी है। नयी रोशनी लायी है।..."
"दुनिया के सारे मेहनतकश महिलाये और ट्रांसजेंडर साथी एक हो... एक हो..."
"चालू छे भाई चालू छे.. अपनी लड़ाई चालू छे..
पितृसत्ता के खिलाफ, अपनी लड़ाई चालू छे..."
"ख़बरदार... खबरदार... खबरदार... पूंजीवाद... तोड़ने तुझे आए है घर घर से फौलाद... मजदूरों... किसानों... अब जागो नौजवानों आओ मिलकर बोले हम इंकलाब जिंदाबाद... इंकलाब जिंदाबाद..."
"हमारे शरीर पे हमारा अधिकार..."
"हम भारत के माता नहीं निर्माता है"
"1 मई या 8 मार्च, आओ करे साथ मार्च"
"पितृसत्ता धोका है, धक्का मारो मौका है।"
"आफरीन से अररिया तक की लड़ाई एक है। गडचिरोली से गसज़ा की लड़ाई एक है।"
"जल-जंगल-जमीन-संसाधनों पे हो जनता का अधिकार.. और उसमे महिलायों का सामान अधिकार..."
"दलित-आदिवासी महिला ताड़न के नहीं, सत्ता की अधिकारी..."

"साम्राज्यवादी शोषण व्यवस्था को उखाड़ फेकने के संघर्ष से अलग रहकर महिला मुक्ती का संघर्ष सफल नही हो सकता"

– अनुराधा शान बाग/गांधी

अनुज्ञा बुक्स
दिल्ली-110032
एवं
उलगुलान प्रकाशन
नागपुर, महाराष्ट्र राज्य
संपर्क : 9405324405
8390045482

Rs. 20
9 789386 810670